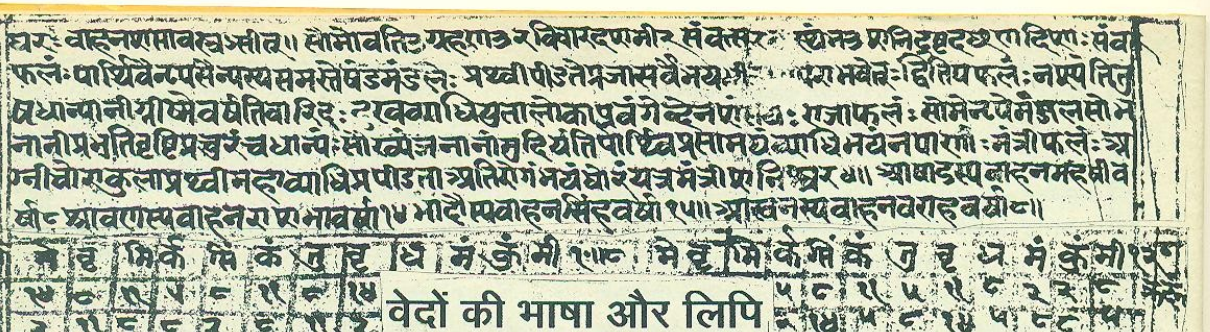

वेदों की भाषा और लिपि

अव्यक्त से व्यक्त की उत्पत्ति होती है। नाद शब्द "णद अव्यक्ते शब्दे" धातु से व्युत्पन्न होता है। नाद शिवात्मक है। शिवशक्ति के संक्षोभ से नाद उससे बिन्दु तथा बिन्दु से अक्षर और अक्षर से मातृकाएँ उत्पन्न होती हैं।

गीता मे "यदक्षरं वेदविदो वदन्ति" जिस अक्षर को वेद के विद्वान जानते हैं, उसी अक्षर को मैं बताता हूँ। बतलाने वाले पुरुषोत्तम जो इन सबसे परे उत्तम पुरूष परमात्मा हैं, जिन्हें वेद "सहस्त्रशीर्षा पुरूष:" कहकर पुकारता है।

वेद का मूल "ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म" ओम् है तीन अक्षर अ. उ. मे सब कुछ छिपा है।

मूलभाषा -पुष्करागम तंत्र में लिखा है - "सदा शिवोऽपि भगवान् नादरूपतयाऽऽगतम्" नादरूप में सदाशिव का निवास है। सद्योजात, पुरूष और ईशान ईन पाँच मुखों में ही समस्त वाङमय है। "ज्ञानमतेत् शिवक्ष्मोत्थम्" सभी ज्ञान शिव से प्रकट हुआ है। नाद और बिन्दु कारण रूप है और कार्य रूप भी है। सुक्ष्मनाद ९ हैं –

(१) चिणि (२) चिणि चिणि (३) घण्टानाद (४) शंखनाद (५) तंत्रीनाद (६) तालनाद (७) वेणुनाद (८) भेरीनाद (९) मृदंगनाद ये नाद योगिगम्य हैं। इनसे अकच आदि स्थूल वैखरी का जन्म होता है। इन नव नादों से सूक्ष्म अ क च ट त प य श ल स्थूल मध्यमा का जन्म होता है। इससे स्थूल अ क च आदि स्थूल वैखरी का जन्म होता है। आचार्य पुण्यानंद के मतानुसार पंचदशाक्षरी श्री विद्या वैखरी है जो ५० वर्णो के स्वरूप वाली है अर्थात स्वर व्यंजन आदि का अर्विभाव पंचदशाक्षरी मंत्र से हुआ है। काशिका टीका में अ, इ, उ, ऋ, लृ इन पाँच वर्णो को आद्य माना है, ईन्हीं अक्षरों से ४९ अक्षरों की उत्पत्ति हुई है। श्रुति का प्रमाण है - "असद् वा इदमग्र आसीत् ततो वै सद्जायत" यह असत ब्रह्म सृष्टि के पहिले असत् था निर्गुण था, अक्षर स्वरूप था। फिर सगुण अक्षर रूप बना। "अक्षराणामकारोऽस्मि इस गीता के श्लोक के अनुसार अक्षरों में अ सर्व श्रेष्ठ माना है। वह अ ईश्वरनाभि में परा, हृदय में पश्यन्ती विशुद्ध चक्र कंठ में मध्यमा तथा मुख में वैखरी में प्राप्त होकर आदि रूप होता है।

संपूर्ण वेदांतों में ईश्वर एक है। अइउण् सूत्र है जिसका अर्थ अ-ईश्वर, इ-चित्कला का आश्रय लेकर उण्-का अर्थ व्यापक सगुण बनता है। यहाँ पर ऋ ईश्वर और लृ- माया है। दोनों में व्याकरण की दृष्टि से सावर्ण्य है, अभेद है। लृ से मन हुआ तथा उससे जगत्सृष्टि हुई। वस्तुत: पाणिनि के चौदह सूत्रों में जो वर्णाक्षर हैं वे ही सभी भाषाओं के मूल हैं वे चाहे हिन्दी हों या अंग्रेजी हों इसमें कोई विवाद अथवा विरोध असंभव है। चौदह सूत्र पाणिनि को शंकर द्वारा प्राप्त हुए थे और वे शंकर के बनाये भी नहीं थे। उन्होंने एक्का नाद से उनको अभिव्यक्त किया था। शब्द ब्रह्म अनादि है। सूत्रों के आदि का अ शिव रूप तथा सूत्रों का अंत्य अक्षर ह कला विमर्श शक्ति है। अह प्रत्याहार है। इस प्रत्याहार का उच्चारण प्रसन्नता में प्राणिमात्र करता है। "अ ह"

वैदिकी भाषा :

वेद सदाशिव के श्वास प्रश्वास से प्रकट है। पाणिनि शिक्षा में "यथोक्तं लोकवेदयो :" लिखा है। लोक एवं दोनों को उच्चारण विधि कहते हैं। व्याकरण में गो शब्द का अर्थ सास्नामान् (गले मे लटकती हुई खाल) है और शिक्षा शास्त्र में गो का उच्चारण जिह्वा की मूल से किया जाता है। महाभाष्य में लिखा है - "य एव लौकिका शब्दास्त एव वैदिकास्त एव तेषामर्था:" जो शब्द लौकिक हैं वे ही वैदिक हैं और वे ही उनके अर्थ हैं। शिक्षा में भाषाक्रम के संबंध में शंकर ने शांकरी विद्या महर्षिपाणिनि को दी है। भाषा के वर्णोच्चारण विधिपाणिनि शिक्षा तथा अन्य शिक्षा में विस्तृत रूप से दी है। पाणिनि शिक्षा में शम्भ मत से वर्णो की संख्या ६३ या ६४ बतायी है। जिनमें २१ स्वर २५ स्पर्श य व र व की संख्या ८ तथा ४ यम होते हैं। "प्राकृते संस्कृते चा पि स्वयं प्रोक्ता स्वयंभुवा".

इस वाक्य के आधार पर प्राकृत भाषा संस्कृत भाषा तथा आदि शब्द से अपभ्रंश भाषा आदि के सभी वर्ण स्वयं शिव द्वारा कथित हैं।

इन शिक्षाशास्त्र के प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि अनादिनकाल से भाषा चार भागों में ही विभक्त है - (१) वैदिक संस्कृत (२) लौकिक संस्कृत (३) प्राकृत भाषा (४) पाली अपभ्रंश भाषा कालान्तर में इन्ही भाषाओं का परिणाम हुआ।

भाषा शब्द भाष् प्राकृत से बनता है। उच्चारण इसका अर्थ है। उच्चारण विधि शिक्षा बताता है जो वेद की नासिका (नाक) है। शुद्ध एवं अशुद्ध का निर्णय व्याकरण शास्त्रज्ञ करता है जिसे वेद का मुख माना गया है। शुद्ध शब्द के पुण्य एवं अशुद्ध शब्द के प्रयोग करने से पाप मिलता है। यह आदेश महर्षि पतन्जलि का है। वर्णों के स्थान नियत हैं, प्रयत्न भी उच्चारण में किया जाता है। कुछ वर्णों के उच्चारण में थोडा श्वास जैसे च, ट, आदि तथा कुछ वर्णों में दीर्घ श्वास लिया जाता है। प्राचीन काल में यास्काचार्यने निरूक्त (वेद का कान) में वैदिक शब्दोंका निर्वचन किया था, जिसपर दुर्गाचार्य का भाष्य है। वैदिक काल का रीतिप्रचलन यास्क तक ही रहा। ईसा से पूर्व पांचवी शताब्दी तक पाणिनी काल से लौकिक संस्कृत प्रचलन की वृध्दि हुई। पाणिनि के सूत्रों से अनुमान होता है कि उस समय वैदिक और लौकिक संस्कृत दोनों का ही प्राधान्य था। सूत्रों में "भाषायां सदस

श्रुव: तथा बहुतं छन्दसि'' से प्रतीत होता है कि उस समय भाषा का अर्थ लौकिक संस्कृत था। पाणिनि के सूत्र ''सर्वत्र विभाषा गो: की वृत्ति है -'' लोके वेद चैड न्तस्य गो: प्रकृतिभाव: पदान्तो'' लोक में और वेद में एडन्त गो शब्द को प्रकृति भाव होता है। इससे भी सिध्द होता है कि उस समय लौकिक संस्कृत और वैदिक संस्कृत दोनो ही थे। अष्टाध्यायी लौकिक व्याकरण के अतिरिक्त वैदिक एवं स्वर प्रक्रिया भी है। उक्त व्याकरण ग्रन्थ के सूत्रों में व्याकरण शास्त्रों के आचार्यों के नाम का ग्रहण किया गया है जैसे ''अवङ् स्फोटायनस्य, लोप: शाकल्यस्य'' आदि स्फोटायन ऋषि पाणिनि के गुरू थे इसीलिये स्फोटायन-ग्रहणं पूजार्थ लिखा है। आठ व्याकरण हैं किन्तु वे आर्ष तुल्य हैं संस्कृत के ग्रथों में कुछ शब्द ऐसे मिलते हैं जो पाणिनीय व्याकरण नियम से विरूध्द हैं। तथा टीकाकारों ने आर्षा यम् यह कहकर मौन ग्रहण कर लिया है। ''पुत्रेति तन्मयतरा तरवोऽभि नेतु:'' इस भागवत के श्लोक में श्रीधर जीका यह आर्ष प्रयोग है क्योंकि पुत्रेति पाणिनि-शास्त्र संभव नहीं है'' ऐसे अनेक उदाहरण हैं पर ऐसा नही है शास्त्रों के शब्द प्रयोग साधु वे अन्य व्याकरणों से निष्पन्न शुध्द हैं, प्राचीन व्याकरण आर्ष है उस समय उन्हीं का प्रचलन था। संवुध्दौ शाकल्यस्येता वनार्षे:'' इस पाणिनि सूत्र में अनार्ष शब्द का प्रयोग है जिसका अर्थ आर्ष भिन्न है। आर्ष का अर्थ ऋषि संबंधित इस शब्द प्रयोग से ज्ञात है वैदिकी भाषा ऋषियों की भाषा थी। वे मन्त्रद्रष्टा थे न कि कर्ता। क्योंकि यजुर्वेद के मंन्त्र में ''छन्दां सि जज्ञिरे'' लिखा है और जज्ञिरे पद जनी प्रादुर्भाव धातु से बनता है। प्रादुर्भाव का अर्थ प्रकट है वेदों की अभिव्यक्ति है उत्पति नहीं। अस्तु। वेद के लिये छन्दस प्रयोग बहुधा देखनें में आता है। ''छन्दासि पुनर्वस्वोरेकवचनम्'' (पाणिनिसूत्र)। मीमांसा परिभाषा में वेद दो भागों में विभक्त है। (१) मंत्र भाग (२)। मंत्र छंदोवध्द है और ब्राह्मण गद्यपूर्ण है। ब्राह्मण भाग की रचना कुछ काल की हो सकती है। छन्दास् शब्द का अर्थ स्वतंत्र होता है। वेद स्वतंत्र है अत: छन्दोमय है। लौकिक संस्कृत का आदि काव्य वाल्मीकि रामायण है उस समय भी वेदभाषा का ही प्राधान्य था। काव्य का आदि श्लोक जो ब्रह्मा की भारती है, उसी का प्राकट्य महर्षि के मुख से हुआ था। ''मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगम: शाश्वती: समा:। यत्क्रौन्चमिथुनादेक मवधी: काममो हितम् ''यहाँ पर व्दा त्रिंशदक्षराऽनुष्टुप'' इति छान्दसा: चंपूरामायण टीका। बत्तीस अक्षर का अनुष्टप छन्द वैदिक है।

वेद में ओम आदि वर्ण है। इसमें तीन मात्रा है - एक मात्रो वेद ह्रस्वो व्दिमात्रो दीर्घ उच्यते। त्रिमात्रस्तु प्लुटो ज्ञेय: ''ह्रस्व, दीर्घ और लुप्त इनकी उच्चारण विधि पक्षियों से सिखनी चाहिये। चाष पक्षी एक मात्रा, कौआ दो मात्रा और मोर एवं मुर्गा तीन मात्रा बोलता है। इसी प्रकार स्वर-उदात्त (उँचे स्वर मे) अनुदात्ता (नीचे स्वर में) तथा स्वरित (मध्ये स्वर मे) होता है। उदात्त का चिन्ह ( ) अनुदात्त का चिन्ह (-) है। प्राया वेद के भाषा शब्द लौकिक संस्कृत से विलोम होता हैं। एक वचन का बहुवचन स्त्रीलिंग का पुलिंग आदि। रामास: वेद में लोक में रामा: होता है। कर्णे: लोक में ''भद्रं कर्णेभि : ''वेद की भाषा में होता है। सोम शब्द वेद में अधिक प्रसिध्द है। अवेस्ता देश में उसे ह्ओम कहते हैं। ऋग्वेद की तरह अवेस्था की भाषा में ग्यारह अक्षरोंवाले चार पादों से त्रिष्टुप छन्द, आठ अक्षर के तीन पादों की गायत्री तथा चार पादों के अनुष्टुप छन्द दृष्टिगोचर होते हैं। लेनिन भाषा में देवताओं के लिये देवुस् प्रयोग मिलता है। घोस्मिता वैदिक शब्द को ग्रीक भाषा में ज्यूस्पेटर तथा लेनिन भाषा में ज्युपिटर कहते हैं। वैदिक उषा का नाम लेनिन में और ग्रीक में एओस् है। अवेस्ता में इन्द्र का अर्थ राक्षस है। वेद में प्रयुक्त वृत्रहा अवेस्ता में वरेघ्न लिखी है। सोम शब्द ग्रीक भाषा में अम्रोसिय नाम से अमृत की समानता रखता है। विदेशी भाषा में असुर को अहुर कहा जाता है। वैदिक मंन्त्रों में प्रकृति सौकर्यवर्णन, उपमा अलंकारादि का भी वर्णन है। गद्य भाग उपनिषद आदि में आख्यायिकाएँ हैं। वे अध्यात्मविधि से संबध्द हैं।

लिपि :

भाषा का चित्रण लिपि है। लिपियों का मूल ब्राह्मी लिपि है। ब्राह्मी लिपि में अ का रुप यू ऐसा मिलता है। अकार वासुदेव है। आदि वर्ण है। ओष्ठ का स्वरूप उक्त लिपि जैसा ही है। ( ) इस प्रकार लिखने से मुखाकृती बन जाती है। सर्वप्रथम ब्रह्माजी ने मुख बनाया। फिर क्रमश: अंगसृष्टि एवं जगसृष्टि हुई। फिर भूतलिपि की रचना की गई। वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत की लिपियाँ प्राय: समान हैं, व्याकरण की दृष्टिसे स्वर चिन्ह, आदि में भिन्नता है। तथा व उच्चारण में भी भिन्नता है। कंठस्वर से बोलने पर ऋग्वेद में 'ष' कोण और कृष्णयर्जुवेद में भी (ष) शुक्ल यजुर्वेद में स को ख बोलते हैं। ऋग्वेद में मंत्र को अंतिम मन्त्रों को कम जोर से, यजुर्वेद में अधिक बल देकर बोलते है। हस्तस्वर का प्रकार ऋग्वेद में ऊपर और नीचे लाना, यजुर्वेद में उदान्ततर अनुदान्तरत आदि। साम में ७ अंगुलिचालन गुरू परंपरा से ज्ञातव्य है। ऋग्वेद में कंपस्वर सुप्राव्ये चिन्ह तीन प्रकार यजुर्वेद में गणपतिं हवामहे में अनुस्वार चिन्ह गणपति होता है। अनुस्वार चिन्ह तीन प्रकार का होता है। (१) ⸢ (२) ⸢ (३) ⸢। पूर्ण विसर्ग का चिन्ह ÷ है। अर्धविसर्ग चिन्ह (,) है। हस्तस्वर का संचालन और कंठस्वर से उच्चारण सम कोटि पर रहना चाहिये जिस प्रकार हारमोनियम बजाया जाता है। ऐसा करने से मंत्र शीघ्र फल देता है। व्युब्ज, जा त्यस्वर भी होते हैं। चिन्ह क्रम w, ८, है। वैदिक स्वर ग्रीक भाषा के समान गाने के योग्य हैं। ग्रीक में अक्युतादि स्वर ईसा के बाद में प्रचलित हुआ था। संस्कृत भाषा उदात्त आदि स्वर भी ईसा के बाद सातवी शदी में, अथवा पहिले हुआ। ग्रीक में हेप्र वेद में सप्ते है। मूल आर्य भाषा में जो स्वर जिस वर्णनपर है, उसमें दोनों भाषाओं में समानता है।

वेद की भाषा दुर्बोध होने के कारण ईसा के बाद चौदह शताब्दी के उत्तर भाग में दक्षिणात्य वल्लारि देश (विजयनगर) में जन्म ग्रहण करनेवाले सायणाचार्य ने वेदपर भाष्य लिखा है।

वर्तमान युग के चारों वेदों के भाष्यकार सद्गूरू महामण्डलेश्वर स्वामी श्री. गंगेश्वरानंदजी महाराज हैं। जिनके गुरू गंगेश्वर वेद दर्शन संस्कृत महाविद्यालय वृन्दावन में भूतपूर्व प्राचार्य पद सेवानन्तर उन्हीं की कृपा प्रसाद से प्राप्त यह समर्पण करते हुए इस लेख को विराम देता हूँ।

प्रस्तुति -

श्री. राधाकृष्ण शास्त्री (गौड)
मथुरा (उ. प्र.)